38.0 श्री अरविन्द और पं0 दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवाद की अवधारणा का 21 वीं सदी में उपादेयता

- **डॉ0 अमित कुमार**, सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी
  Email: amitnonstop@gmail.com

शोध-सार

श्री अरविन्द और पंडित दीनदयाल उपाध्याय की वैचारिकी का भारतीय पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण अवदान है। इन दोनों ने भारतीय राष्ट्रवाद की पश्चिम देशों की तरह मात्र एक राजनीतिक आंदोलन नहीं, वरन् एक एक गहन और आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अवधारणा के रूप में स्वीकार किया है। श्री अरविन्द का राष्ट्रवाद आध्यात्मिक और पं0 दीनदयाल उपाध्याय का, राष्ट्रवाद सांस्कृतिक है। श्री अरविन्द राष्ट्र की एक जीवंत शक्ति के रूप में देखते हैं, जिसका आधार उनका समग्र अद्वैतवाद है। जबकि पं0 दीन दयाल उपाध्याय के अनुसार राष्ट्र का आधार चिति और संस्कृति है जो उनके एकात्म मानवबाद पर अवलम्बित है। इन दोनों का राष्ट्रवाद उनके तत्वमीमांसा आधार का प्रतिफलन है जो अपने स्वरूप में भारतीयों की केन्द्रगत रखता है और अपनी व्यापकता में मनुष्य और राष्ट्र के सामूहिक कल्याण उत्थान पर बल देता है इस शोध पत्र में इन दोनों के राष्ट्रवाद का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। साथ ही यह दिखाने का प्रयास किया जाएगा कि यह पश्चिमी राष्ट्रवाद से किस प्रकार भिन्न है।

बीज शब्द- राष्ट्रवाद, चिति, समग्र अद्वैतवाद एकात्म मानवतावाद ।

परिचय

भारत की उर्वर चिन्तन धरा पर ऐसे अनेक दैदीप्यमान नक्षत्र हुए हैं जिन्होंने अपने ज्ञानपुंज से वर्तमान समस्या को संबोधित करते हुए, मनुष्य के चिरंतन आदर्श का संधान किया है। श्री अरविन्द और पं0 दीनदयाल उपाध्याय ऐसे ही प्रखर मेधा वाले चिन्तक है। इनके चिन्तन क्षेत्र में लैकिक और परलौकिक, यष्टि और समष्टि, स्वार्थ और परार्थ, मनुष्य और राष्ट्र आदि का अनुपम समन्वय हुआ है। आज 21 वीं सदी में नई चुनौतियों मानव के सम्मुख है। राजनीतिक उपनिवेशिता लगभग मृतप्राय हो चुकी है, परन्तु सांस्कृतिक उपनिवेशिता प्रभाव गहराता चला जा रहा है। युरोपीन राष्ट्रवाद की अवधारणा से विश्व आक्रांत है और मनुष्य संत्रस्त है। पुनः मनुष्य अपने समक्ष एक नैसर्गिक और चिरन्तन आदर्श को अनुपस्थित पाता है और इस संत्रस्ता में वह जीवन जीने के लिए विवश है। पुराने मूल्यों का व्यामोह भी नहीं छुट रहा है और नये मूल्यों का सृजन भी नहीं हो पर रहा है। इस परिस्थिति में एक मनुष्य के लिए, एक राष्ट्र के लिए क्या करणीय है, यह एक गंभीर प्रश्नचिन्ह बनकर उभरता है। एक मनुष्य या एक राष्ट्र अपने को व्यष्टि से अलगाव करके नहीं रख सकता है और न ही उसे दूसरे पर आधिपत्य की कोशिश करना इच्छनीय है।

इन सभी प्रश्नो का समुचित उत्तर का प्रयास हमें श्री अरविन्द और पं0 दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवाद की अवधारणा में मिलता है।

शोध प्रश्न

प्रस्तुत शोध पत्र में निम्न प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है

1. राष्ट्रवाद की अवधारणा और स्वरुप क्या है ?
2. भारतीय राष्ट्रवाद, पश्चिमी राष्ट्रवाद से किस प्रकार भिन्न है ?
3. राष्ट्रवाद की आध्यात्मिक अवधारणा क्या है ?
4. श्रीअरविन्द का राष्ट्रवाद और पं० दीनदयाल के राष्ट्रवाद में समानता और अंतर क्या है ?
5. इन दोनों के राष्ट्रवाद की वर्तमानयुग में क्या प्रासंगिक है ?

शोध का उद्देश्य

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य आज के युद्ध के युग में राष्ट्रवाद की प्रासंगिकता और भूमिका को प्रतिष्ठित करना है. भारतीय राष्ट्रवाद और पाश्चात्य दोनों भिन्न – भिन्न है; दोनों का साधन और साध्य पृथक है, इस तथ्य को तार्किक रूप से प्रस्तुत करना है. पुन: आधुनिक भारत के दो प्रमुख विचारक श्री अरविन्द और पं० दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवाद की अवधारणा को प्रस्तुत करना है और अंत में, भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा वैश्विक शांति में अपनी भूमिका किस प्रकार निभायेगी, इसको स्पष्ट करना है.

विगत सदी में, राष्ट्रवाद की विकृत अवधारणा के कारण संसार दो विश्व युद्ध झेल चुका है। वैश्वकीकरण के युग में और वैश्विक समस्याआयों के कारण राष्ट्रवाद निरर्थक प्रतीत होती है। समकालीन लेखक और चिन्तक युवाल नोआ हरारी राष्ट्रवाद को ही समस्या मानते हैं। वे अपनी पुस्तक 21 Lesson for the 21 century में लिखतें हैं The merger to into teach and biotech theaters the core modern values of liberty and sociality. Any solution to the technological challenge has to involve Global co-operation. But nationalism religion and culture divide human kind into hostile camps and make it very difficult to co-operation on a global level. इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवाद को समकालीन युग में एक मानव विरोधी अवधारणा प्रतीत होती है आधुनिक युग में दो विश्व युद्धों का एक कारण राष्ट्रवाद को भी माना जाता है। इसे वैश्विक शांति और अंतर्राष्ट्रीयकरण में बाधक भी माना जाता है। परन्तु क्या वास्तव में भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह आरोप लगाया जा सकता है? इसके लिए हमें राष्ट्रवाद की अवधारणा समझना होगा और पश्चिमी राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रवाद के मूलभूत अंतर को भी देखना पड़ेगा।

आधुनिक राष्ट्र और राष्ट्रवाद का उदय, ऐतिहासिक रूप से, 18 वीं सदी के अंत में होना माना जाता है। 19 वीं सदी को राष्ट्रवाद की शताब्दी माना जाता है क्योंकि इसी युग में ब्रिटेन और फ्रांस के आधार पर राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य के विचार का सामान्यीकरण किया गया था। राष्ट्रवाद तीन तरीकों से आधुनिक राज्य का निर्माण करता है। प्रथम, ब्रिटेन और फ्रांस जैसे पुराने राज्यों में राष्ट्रवाद के उदय का संबंध राज्य और नागरिक समाज के बीच के जनतांत्रिक संबंधों के विकास से जुड़ा हुआ है। द्वितीय राष्ट्रवाद सांस्कृतिक समरूप पहचान पैदा करता है। तृतीय, राष्ट्रवाद एक राजनैतिक समुदाय या राष्ट्र का दूसरे राजनैतिक समुदाय या राष्ट्र से विभाजित करता है, और यहां तक कि कई मामलों में राष्ट्रवाद की भौगोलिक सीमाएं निर्धारित करता है। पश्चिमी जगत में राष्ट्रवाद के प्रतिपादक जॉन हर्डर को माना जाता है, जिन्होंने 18 वीं सदी में इस शब्द का प्रयोग कर जर्मन राष्ट्रवाद की नींव डाली। लुईस एल0 स्नाइडर राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हैं, ''राष्ट्रवाद, वह मानसिक स्थिति जिसमें व्यक्ति की सर्वोच्च निष्ठा राष्ट्र-राज्य के प्रति होती है, राजनीतिक भावनाओं में सबसे मजबुत बनी हुई है। एक ऐतिहासिक घटना के रूप में, यह हमेशा परिवर्तनशील होती है, बिना किसी पूर्वकल्पित पैटर्न के अनुसार बदलती रहती है।'' राष्ट्रवाद को चित्रित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। परन्तु पश्चिमी राष्ट्रवाद के देखने से यह समझ आ जाता है कि इसका विकसित रूप सांस्कृतिक विविधता को नष्ट करने का प्रयत्न करता है और राष्ट्र वह महाकाय यंत्र बन जाती है जिसमें मानव की गारिमा सुरक्षित नहीं रहती।

यादि हम भारतीय राष्ट्रवाद की ओर दृश्टिपात करें तो परिदृष्य भिन्न प्रतीत होता है। भारत में राष्ट्रवाद कोई आधुनिक संकल्पना नहीं है। भारत की राष्ट्रीय चेतना वैदिक काल से अस्तित्व में है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में 'माता भूमिः पुत्रोडहं पृथ्वियाः' (भूमि माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ) की भावना से पृथ्वी का यशोगान है। ब्रहम पुराण में जम्बूद्वीप में भारतवर्ष की श्रेष्ठ माना गया है। यज्ञों की प्रधानता के कारण भारत को कर्मभूमि तथा अन्य द्वीपों की भोग-भूमि कहा गया है- ''अश्रापि भारत श्रेष्ठ जम्बूद्वीपे महामुने ।। यतो कर्म भूरेशा यधाडन्या भोग भूमयः।। बाल्मिकी रामायण में कहा गया है, ''मित्राणी धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव। जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी इसमें मां और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार, भारत में उपनिवेशिता के दौरान अंग्रेजों द्वारा यह लगाया गया आरोप की भारत में राष्ट्रीय चेतना नहीं है और भारत न एक है और न एक था, पक्षपातपूर्ण और मिथ्या प्रतीत होती है।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद भारत पर विदेशी आधिपत्य के प्रतिकार में उभरा, परंतु इसकी जड़े इसकी सांस्कृतिक विरासत में थी। इसका स्वरूप बहु-आयामी था। एक तरफ तो उसको विदेशी आधिपत्यों में राजनीतिक मुक्ति पाना था और साथ ही, सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण को भी नकारना था। वस्तुतः भारतीय राष्ट्रवाद यह बताता है कि भारत, पश्चिमी देशों की तरह एक राष्ट्र-राज्य नहीं

है, वस्तु एक 'सभ्यता-राज्य' है। डॉ0 राधा कुमुद मुखजी जैसे अनन्य विद्वान भारत की संस्थागत एकता को वैदिक कालीन मानते हैं। पश्चिमी देशों में उनकी भौतिकतावाद और अबाह्य धर्मों से उत्पन्न मानसिकता के कारण राष्ट्र एक भूमि का टुकड़ा होता है। परंतु, ''भारत केवल भौगोलिक टुकड़ों का समूह नहीं है, बल्कि एक जीवित इकाई है जो लोगों से भरी हुई है।''भारत समाज एक जीवित सभ्यता है। भारतीय राष्ट्रवाद अपने समाज के सभ्यागत चरित्र के प्रति जागरूक है और स्वयं की संरचना अपनी सभ्यता के आधार पर करता है। इसलिए यह एक सभ्यता-राज्य है। इस राष्ट्रवाद को भारत के दो श्रेष्ठ विचारक श्री अरविन्द और पं0 दीनदयाल उपाध्याय अपने प्रखर तर्कों और मेधा से प्रकाशित करते हैं।

समकालीन भारतीय चिन्तकों में श्री अरविन्द ने राष्ट्र के विषय में सबसे विशट्र व गहन् चिन्तन प्रस्तुत किया है। उनकी राष्ट्रीयता की भावना मानव एकता का बाधक नहीं, वरन् सहयोगी है। श्री अरविन्द ने भारत की मातृशक्ति के रूप में उपासना की जिसने शताब्दियों से भारवारियों का लालन-पालन किया। उन्होंने अपने आलेख 'भवानी मन्दिर' में कहा है, राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? वह कोई भूमि-क्षेत्र आलंकारिक भाशा मानस की कल्पना नहीं है। वह एक विशाल शक्ति समुदाय में उपस्थित और एक इकाई में बंधे हुए करोड़ों देवताओं की समस्त शक्तियों से निर्मित एक महान शक्ति है। हम भारत में जिस शक्ति भवानी भारती की बात करते हैं, वह 30 करोड़ मनुष्यों की शक्तियों की जागृत एकता है। श्री अरविन्द राष्ट्रीयता को एक राजनैतिक कार्यक्रम नहीं मानते वरन उनके अनुसार राष्ट्रीयता एक धर्म है जो कि ईश्वर से आया है। इस प्रकार वे राष्ट्रीयता एक धर्म मानते हैं। उनके अनुसार जिस प्रकार व्यक्ति शरीर, प्राण और मनस नहीं है बल्कि आत्मा है, उसी प्रकार राष्ट्र शरीर, प्राण अथवा मानस नहीं है, बल्कि आत्मा है राष्ट्र एक सामुदायिक आत्मा है जो कि एक बार पृथक विशिष्टता प्राप्त कर लेने पर अधिकाधिक सचेतन होती जाएगी और जैसे जैसे वह अपना सम्मिलित कार्य एवं मानसिक शक्ति और सुगठित आत्माभिव्यंजक जीवन विकसित करेगी वैसे वैसे वह अपने को उत्तरोत्तर पूर्ण रूप से उपलब्ध करती जाएगी।

जिस प्रकार साधारण मनुष्य जो भौतिक, प्राणात्मक अथवा मनस स्तर पर रहते हैं, उनको यह अनुभव करना कठिन होता है कि उनमें आत्मा भी है, उसी प्रकार वहा राष्ट्र आत्मा को कल्पना सृष्ट मानता है और जिस तरह व्यक्ति में आत्मा विशेष प्रकार के आध्यात्मिक विकास से अनुभव की जा सकती है वैसे ही राष्ट्र आत्मा की चेतना जागृत होने पर ही मनुष्य उसके अस्तित्व का अनुभव करता है। राष्ट्र धर्म का अनुगमन करने वाले व्यक्तियों के लिए राष्ट्र आत्मा एक प्रत्यक्ष और साकार अनुभव है '' जब हमें अनुभव होने लगता है कि भूमि तो देश का बाह्य आवरण मात्र है, यद्यपि वह सचमुच अत्यन्त जीवित आवरण है और राष्ट्र पर अपने प्रभाव की दृष्टि से शक्तिशाली भी है, तब हम यह अनुभव करने लगते है कि उसकी वास्तविक शरीर तो वे पुरूष और स्त्रियों है जो राष्ट्र इकाई के निर्माता है और यह देश एक निरन्तर परिवर्तनशील परन्तु व्यक्ति की देह के समान वही बनी रहनी वाली देह है तब हम एक सच्ची अनुभवात्मक सामुदायिक चेतना की ओर अग्रसर होते हैं, स्वदेशी और स्वधर्म की प्रक्रिया के द्वारा एक राष्ट्र आत्म-साक्षात्कार कर सकती है। संसार में स्वप्रकृति के अनुरूप विकास प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जीव प्राणी, प्रत्येक समष्टि का धर्म है। इस स्वधर्म का पालन ही आत्मसाक्षात्कार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री अरविन्द का राष्ट्रवाद राष्ट्र आत्मा को लक्ष्य बनाता है, राष्ट्रीय अहंकार को नहीं, इसलिए इस राष्ट्रवाद को 'आध्यात्मिक राष्ट्रवाद' कहा जाता है।

परन्तु यह आध्यात्मिक राष्ट्रवाद क्या है? श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की धारणा उपस्थित करके जहां एक ओर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर एक ऐसी राजनीतिक धारणा प्रस्तुत की जिस पर चलकर विभिन्न राष्ट्र अलग अलग प्रगति करते हुए भी समस्त मानवता की प्रगति में अपना योगदान दे सकते हैं। श्री अरविन्द की आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की एक महत्वपूर्ण विषेशता है कि इसमें राष्ट्र के किसी भी अंग का दमन नहीं किया जाता है, राष्ट्र के सभी अंगों, सभी सदस्यों को पूर्ण स्वतंत्रता, पूर्ण एकता और पूर्ण समन्वय के जीवन की ओर आगे बढ़ाया जाता है। इसमें व्यक्ति व समष्टि दोनों का हित सुरक्षित रहता है और मानव एकता का सहायक बनता है। श्री अरविन्द कहते हैं कि एक आध्यात्मिक समाज सामूहिक आत्मा के रूप में अस्तित्व रखेगा। इस प्रकार के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में सन्त से लेकर अपराधी तक किसी भी व्यक्ति को बलपूर्वक, कानून बनाकर तथा पुलिस के दबाव से बदलने की कोशिश नहीं की जाती बल्कि उनमें आन्तरिक परिर्वतन किया जाता है। आर्थिक क्षेत्र में, इसका उद्धेश्य एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करना है जिसमें प्रत्येक को उसकी प्रकृति के अनुसार कार्य मिले और स्वतंत्र विकास का अवसर मिले। राजनैतिक क्षेत्र में, राज्य और व्यक्ति में, दोनों के सर्वांगिण विकास के लिए समन्वय

स्थापित किया जामा है। अन्तर्राष्ट्रीय और आन्तरिक विशयों में सब कहीं स्वतंत्रता आध्यात्मिक राष्ट्र का नियम है वस्तुतः श्री अरविन्द को मानव के उज्ज्वल भविष्य में आस्था है। यह आस्था इस आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित है कि विश्व में सभी जगह व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन के मूल में एक ही परम शक्ति कार्य कर रही है और अन्त में वही होगा जो उस परम शक्ति का नियम है। यह परम शक्ति आध्यात्मिक है। इसलिए आध्यात्मिक राष्ट्रों का विकास और अन्त में आध्यात्मिक मानवता की स्थापना अनिवार्य है।

अब आज जब राष्ट्रवाद को मानव एकता और विश्व बंधुत्व के लिए बाधक माना जाता है। तब इस संदर्भ में श्री अरविन्द का चिन्तन मानव एकता के लिए नई राह दिखाता है। उनके अनुसार जिस सिद्धांतों के आधार पर राष्ट्र का निर्माण होता है, उन्हीं सिद्धांतो के आधार पर मानव एकता स्थापित की जा सकती है। उनके अनुसार ‘‘प्रकृति का सारी कार्य शैली जीवन के दो ध्रुवों व्यक्ति और समष्टि में सामंजस्य स्थापित करने की एक ऐसी प्रकृति पर अवलम्बित है जो उनमें निरन्तर संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करती है। व्यक्ति का पोषण समष्टि समुदाय द्वारा होता है और समष्टि की रचना में व्यक्ति सहायक होता है।’’ इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि श्री अरविन्द के अनुसार राष्ट्र के विकास के लिए व्यक्ति का विकास आवश्यक है और व्यक्ति के विकास के लिए राष्ट्र का भी विकास आवश्यक है। परिवार और राष्ट्र मनुष्यों की प्राकृतिक इकाइयाँ है। और प्राकृति इकाईयां नष्ट नहीं होती। राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद नहीं है। यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक इकाई है जिसका प्रकृति ने स्वयं विकास किया है। ‘‘वर्तमान समय में राष्ट्र वस्तुतः तब तक नहीं मिट सकता जब तक वह अन्दर से निष्प्राण ही न हो जाए।’’

प्रखर राष्ट्रवादी होते हुए भी श्री अरविन्द मानते है कि अन्तोगत्वा राष्ट्रों का विकास मानव एकता के आदर्श की ओर उन्मुख होना चाहिए। राष्ट्रों के विकास का लक्ष्य मानव एकता का विकास है।‘‘यदि मानव जाति की एकता भी उन्हीं साधनों तथा अभिकरणों द्वारा और उसी ढ़ंग से प्राप्त की जानी है जिनके द्वारा तथा जिस ढंग से राष्ट्र की एकता प्राप्त की गई थी, तो हमें यह आशा रखनी चाहिए कि इसका क्रम भी ऐसा ही होगा। श्री अरविन्द के अनुसार विश्व के राष्ट्रों में यन्त्रतत एकता स्थापित नहीं की जा सकती। पुनः इस एकता में प्रत्येक राष्ट्र को अपनी संस्कृति का विकास का पूर्ण अवसर मिले। और अन्त में, इस विष्व एकता या अंतर्राष्ट्रीयता में राष्ट्रवाद का विलोपन ना हो, परन्तु इसका पूर्ण विकास हैं। प्रकृति में विकास की प्रक्रिया ही हमें मानव एकता के आदर्श की ओर ले जाएगी।

एकात्म मानववाद के प्रणेता और प्रखर राष्ट्रवादी पं0 दीनदयाल उपाध्याय का भारत के प्रति राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अत्यन्त मुखरित है। दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद भारतीय संस्कृति पर आधृत है, अतः इनके राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भी कहा जाता ह। उनका राष्ट्रवाद उनके एकात्म मानववाद का स्वात्भाविक व तार्किक प्रतिफलन है। व्यक्ति और समाज का आत्म-साक्षात्कार ही एकात्म मानववाद का परिचय है। उपाध्याय जी के अनुसार पश्चिमी राष्ट्र और राष्ट्रवाद भेद पर आधारित है और उनकी एकता नकारात्मक विचार की है। वे अंग्रेजी की एक कहावत का उपयोग करते हैं - Nations die in peace and live in war उपाध्याय जी अपने एकात्म मानववाद को औपनिशद्रीय दर्शन पर आधृत करते हैं। जहां एक ही आत्म सभी में उपस्थित है। यह विदित है कि भारतीय परम्परा विभिन्नता में एकता का संधान करती है। व्यष्टि और समष्टि को विरोधी नहीं मानती है। इसी आधार पर उपाध्याय जी समष्टि की सबसे बड़ी इकाई ‘राष्ट्र’ है। उनके अनुसार जिस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समुच्चय से व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म या संविधान और आदर्श या संस्कृति के समुच्चय से ‘राष्ट्र’ बनता है। इस प्रकार हम देखतें हैं कि उपाध्याय जी राष्ट्र को जीवंत मानते हैं। अब एक समस्या उत्पन्न होती है कि व्यक्ति और समाज कैसे एकात्म होतें हैं, व्यक्ति और राष्ट्र किस प्रकार एक दूसरे पर आश्रित हैं? उपाध्याय जी के अनुसार, ‘‘शिक्षा, कर्म, योगक्षेम और यज्ञ ये चार चीजें व्यक्ति और समष्टि को एकात्म करती है। इन चारों से व्यक्ति और समाज एक-दूसरे से अन्तः क्रिया करती है। जिस प्रकार व्यक्ति का पुरुषार्थ होता है, उसी प्रकार राष्ट्र का भी पुरुषार्थ होता है।

उपाध्याय जी भारत की वर्तमान दुरवस्था का कारण उपनिवेशीकरण को मानते हैं। उनके अनुसार राष्ट्र-मानस में कुंठा का कारण राष्ट्र जीवन की आत्मा का साक्षात्कार न करना और अपने उपर विदेशी और विजातीय विचारधाराओं एवं जीवन-मूल्यों को थोपना है। उपाध्याय जी राष्ट्र की आत्मा को ‘चिति’ कहतें हैं। यह चिति प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है, जो नैसर्गिक या जन्मजात होती है। राष्ट्रों का उत्थान-पतन चिति के अनुकुल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर करता है। यहां यह भी

महत्वपूर्ण है कि उपाध्याय जी के अनुसार मानव एकता के लिए राष्ट्रों का नष्ट करना उचित नहीं है। विभिन्न विशिष्टताओं वाले राष्ट्र परस्पर पूरक होकर मानव एकता का निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकार किसी राष्ट्र पर किसी अन्य राष्ट्र का चिति थोपना अनुचित है। राश्ट्र की चिति स्वयं को अभिव्यक्त करने तथा व्यक्तियों को पुरुषार्थों के संपादन की सुविधा प्राप्त कराने के लिए अनेक संस्थाओं को जन्म देती है। जैसे शरीर में विभिन्न अंग होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र में संघ, पंचायत, विवाह, राज्य आदि होतें हैं।

उपाध्याय जी के अनुसार भारतीय राज्य का आदर्श 'धर्म राज्य' है, परन्तु यह धर्मराज्य साम्प्रदायिक नहीं है। इस राज्य में सभी पंथों और उपासना पद्धतियों के प्रति सहिवणुता एवं समादार का भाव भारतीय राज्य का आवश्यक गुण है। धर्मराज्य किसी भी व्यक्ति या संस्था को सर्वसन्ता-संपन्न नहीं मानता। सभी नियमों और कर्तव्यों से बँधे हुए हैं। यह धर्मराज्य कर्तव्य प्रधान है, ना कि अधिकारमूलक कर्तव्य-प्रधान होने के कारण इसमें सभी के अधिकार सुरक्षित रहतें हैं और संधशों का कोई स्थान नहीं रहता है।

निष्कर्ष तथा सुझाव

इस प्रकार देखते है कि भारत की जो राष्ट्र की अवधारण है, वह पश्चिमी दृष्टि से भिन्न है। श्री अरविन्द और पं0 दीनदयाल उपाध्याय भारतीय संस्कृति के आधार पर जो राष्ट्रवाद प्रस्तुत करते हैं, उसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता भी सुरक्षित रहती है और मानव एकता का आदर्श भी उपस्थापित होता है। विभिन्न राष्ट्र अपनी विशिष्टताओं को अक्षुण्ण रखते हुए मानव कल्याण मूलक अंतर्राष्ट्रीयवाद की स्थापना करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

हरारी, युवाल नोआ (२००८), २१ लेसन्स फॉर द २१५ t सेंचुरी, पृ० ७७, लंदन: जोनाथन केप

वान्चू, रोहित ; राष्ट्रवाद और राष्ट्र राज्य, यूरोपिय इतिहास के कुछ पहलू १७८९-१९४५, पृ० 139, gyankosh.ac.in

स्नाइडर, लोकस (२००३), द न्यू नेशनलिज्म, पृ० 8, लंदन : रूटलेज

ब्रह्म पुराण, 18/21-23

बातिमकी रामायण, 6-124 – 17

Elst (2024), "Indian as a civilization- states", See http://koenraadelst blogspot cum 2014/ india-as-civilization-status.html

मुकर्जी, राधा कुमुद (1914), द फंडामेंटल यूनिटी ऑफ़ इंडिया, पृ० 5, लंदन: इन्गामानस ग्रीन एंड को०

वही, पृ० 15

शर्मा, रामनाथ (1982), श्री अरविन्द का समाज दर्शन, पृ० 100, दिल्ली : विवेक प्रकाशन

वही, पृ०

श्री अरविन्द (1997), द ह्यूमन साइकिल, पृ० ३८, पांडिचेरी : श्री अरविन्द पब्लिकेशन

वही, पृ० 39

शर्मा, रामनाथ (1982), श्री अरविन्द का समाज दर्शन, पृ० १०६, दिल्ली : विवेक प्रकाशन

वही, पृ० 107

श्री अरविन्द (1950), द आइडीयल ऑफ हमल यूनिटी, पृ० 8, पांडिचेरी : श्री अरविन्द आश्रम

वही, पृ० 131

वही, पृ० 399

उपाध्याय, दीनदयाल (2016), एकात्म मानववाद, पृ० १६, नई दिल्ली : प्रभात पेपर बैक्स.

वही, पृ० 32

वही, पृ० 38

वही, पृ० 46

वही, पृ० 49